ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
ISSN No.: 2347-2944, RNI TITLED No. :UPBIL04292,
RNI REG. No.: UPBIL/2014/66218, SOCI.REG. No.: 561/2013-14 Vol.-5, No.-II, PP-285-288,YEAR- DEC.2016

# समस्त–पद रचना

❑ डॉ0 चन्द्रेश कुमार पाण्डेय

*समस्त पद रचना समास के नाम से अभिहित है। यह पद रचना आदिकाल से चली आ रही है। "बहुत से पदों का मिलकर एक पद हो जाना, समास कहा जाता है – समसनं समासः।" ग्रीक, लैटिन आदि प्राचीन भाषाओं में समस्त पदों की स्थिति इस बात को सिद्ध करती है कि संस्कृत को समास रचना भारोपीय भाषा परिवार से उत्तराधिकार के रूप में प्राप्त हुई है। संस्कृत भाषा में स्वतन्त्र पदों को एक समस्त पद में बनाने की मूल प्रवृत्ति आदिकाल से (भारोपीय काल से) ही विद्यमान थी। समास प्रक्रियाओं में दो तरह के पदों का प्रयोग होता है – "समास में एक से अधिक पद होते हैं, इनमें से पहले पद को पूर्वपद कहते हैं और अन्तिम (या अगले) पद को उत्तर पद कहते हैं।"[2] समास के घटक दो या अधिक पदों वाले समासों में भी उन सबका विभाजन पूर्वपद तथा उत्तर पद की इकाई में ही किया जाता है। इस प्रक्रिया में एक बार दो ही पदों का समास होता है जैसे– 'जनकतनयास्नानपुण्योदकेषु' – इस समस्त पद के पाँच घटक पद हैं। समास की प्रक्रिया में दो–दो पदों का ही योग हो सकता है।*

यह प्रक्रिया तब तक चलती है जब तक कि अन्तिम पद भी मिलकर उस समस्त पद की इकाई में एकाकार नहीं हो जाता। इस उदाहरण में जनक (पूर्वपद) + तनया (उत्तर पद) = जनकतनया, पुनः जनकतनया + स्नान = जनकतनयास्नान, यह पद 'पुण्य' पद से संयुक्त होकर स्वयं पूर्वपद बन जाता है और यह प्रक्रिया चलती रहती है। ऐतिहासिक विश्लेषण से ज्ञात होता है कि "वैदिक काल में जबकि संस्कृत बोलचाल की भाषा थी, उसके समस्त पदों के घटकों (Components) की संख्या अत्यन्त ही सीमित अर्थात् दो होती थी।"[3] केवल सामान्यतः द्वन्द्व समास में ही दो से अधिक पदों का समस्त पद होना सम्भव हो सकता है। "समाहार द्वन्द्व को छोड़कर समस्त पद के लिंग का निर्धारण भी प्रायः उत्तर पद के लिंग के आधार पर होता है।" समास होने पर उस समस्त पद (समासयुक्त) की प्रातिपदिक संज्ञा होती है। समस्त पदों की पद संज्ञा – 'कृत्तद्धित समास्याश्च' (1.2. 46) सूत्र से होती है और समस्त पद के शब्द अपने मूल रूप में प्राप्त होते हैं। प्रातिपदिक संज्ञा होने से समास होने वाले पदो ंके बाद जो विभक्तियाँ हैं उनका "सुपो धातु प्रातिपदिकयोः–7.2.1"5 सूत्र से लोप हो जाता है। प्रातिपदिक संज्ञा होने के द्वारा विभक्तियों का लोप होने पर 'स्वौजस्मौट –0 (4–1–3)' से सु आदि कारक विभक्तियाँ होंगी। समास का अर्थ बताने वाले वाक्य को विग्रह (विग्रह वाक्य) कहते हैं। यह दो प्रकार का होता है– लौकिक विग्रह, जिसका लोक (सामान्य जन) में प्रयोग होता है; अलौकिक विग्रह – जिसका लोक में प्रयोग नहीं होता। यथा– विद्यायाः अर्थी (लौकिक विग्रह) का विद्या + ङस् अर्थिन् + सु अलौकिक विग्रह है।

प्राचीन भारतीय वैय्याकरणों के अनुसार समास के प्रमुख 4 भेद किये गये हैं–

**1. पूर्वपद प्रधान–** जिस समस्त पद में उत्तर पद की अपेक्षा पूर्वपद के अर्थ की प्रधानता हो। इसके अन्तर्गत 'अव्ययीभाव' को रखा गया है। इनका प्रयोग अव्ययों के रूप में होता है। इसमें दोनों ही पद मिलकर किसी क्रियाविशेषण के अर्थ की अभिव्यक्ति करते हैं। इसमें अर्थ का निर्धारक अव्यय पद होता है। "यह समास प्रायः नित्य रूप से होता है इसलिए इसका समास विग्रह करते समय अव्यय पद का प्रयोग नहीं किया जाता है, इसके स्थान पर इसी अर्थ के अभिव्यंजक पदों का प्रयोग किया जाता है।"[6]

❑ एसोसिएट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग, महाविद्यालय भटवली बाजार, उनवल, गोरखपुर (उ0प्र0) भारत

सोलह (16) अर्थों में विद्यमान अव्यय का सुबन्त के साथ नित्य समास होता है– प्रथमा आदि विभक्ति, समीप, समृद्धि, समृद्धि का अभाव, वस्तु का अभाव, नाष, अनुचित, शब्द की अभिव्यक्ति, पीछे, यथा, क्रमशः, एक साथ होना, समानता, सम्पत्ति, सम्पूर्णता और अन्त तक।" अव्ययं विभक्ति समृद्धि व्यर्द्ध यर्था भावात्यय संप्रति शब्द प्रादुर्भाव पश्चाद्य थानुपूर्व्ययौग पद्य–

सादृश्यसम्पत्तिसाकल्यान्तवचनेषु (2.1.6)।"[7]

इसमें अव्यय के स्व (अपने) पद का प्रयोग न होने से इसे पारिभाषिक रूप से 'अ–स्वपद' विग्रह कहते हैं। नित्य समास में 'अ–स्वपद' विग्रह ही होता है या कहें कि विग्रह (वृत्त्यर्थावबोधकं वाक्यं विग्रहः) नहीं होता। उदाहरण के लिए अतिमात्रम् = मात्रामतिक्रम्य (मात्रा से बढ़ाकर, अत्यधिक), अतिनदम् = नद्याः समीपम् (नदी के निकट), यथाशक्तिः = शक्तिमनतिक्रम्य (जिसमें शक्ति का अतिक्रमण न हो) – "आ ईषदर्थक, यथा आकुटिलः– थोड़ा बहुत टेढ़ा, आनील = किञ्चित् नील, अधि श्रेष्ठता का द्योतक है – अधि स्त्री 'प्रधान स्त्री'।"[8] इस समास के रूप साधारणतः अकारान्त में द्वितीया विभक्ति, एकवचन, नपुंसकलिंग में होते हैं, यथा– दिशयोःमध्यात् (मध्यम्, मध्येन, मध्ये, मध्यस्य आदि) सबका रूप 'अपदिशम्' बनेगा। 'अपदिशात्' भी बनेगा। तृतीया तथा सप्तमी के योग में बनेगा – अपदिशेन या अपदिशे – तृतीया सप्तम्योर्बहुलम् (2.4. 84), ह्रस्व अकारान्त अव्ययीभाव के बाद तृतीया और सप्तमी को विकल्प से 'अम्' होता है। अकारान्त को छोड़कर विभक्ति का लोप होता है यथा– अधि हरि। इस समास में सर्वत्र ही उत्तर पद के दीर्घ का ह्रस्वीकरण होता है। यथा– मक्षिकाणाम् अभावः = निर्मक्षिकम्। यदि उत्तर पद के अन्त में 'इ' है तो उसे 'अ' हो जाता है, जैसे– निर्गतः अंगुलिभ्यः = निरंगुलम्।

**2. उत्तर पदार्थ प्रधान** – जिसमें पूर्व पद की अपेक्षा उत्तर पद का अर्थ समस्त पद के अर्थ का निर्धारक हो। ये संज्ञा षब्दों के रूप में प्रयुक्त होते हैं। इसके अन्तर्गत व्यधिकरण तत्पुरुष (जब पूर्व पद में प्रथमा विभक्ति को छोड़कर कोई विभक्ति हो) तथा समानाधिकरण (समान आधार वाली विभक्ति) तत्पुरुष आते हैं। समानाधिकरण तत्पुरुष का दूसरा नाम कर्मधारय भी है। कर्मधारय के अन्तर्गत द्विगु समास एवं नञ् समास आते हैं। तत्पुरुष का विग्रह दो प्रकार का है– 1. तत्पुरुषः (समानाधिकरण) 2. तस्य पुरुषः (व्यधिकरण)।

डब्ल्यू.डी. ह्विट्ने ने समानाधिकरण को वर्णनात्मक समास तथा व्यधिकरण को आश्रित समास नाम दिया है।

**व्यधिकरण समास**– जब पूर्व पद प्रथमा विभक्ति को छोड़कर किसी अन्य विभक्ति का होता है तो वह व्यधिकरण तत्पुरुष कहलाता है। इस प्रकार इसमें प्रथम पद द्वितीया, तृतीया, चतुर्थी, पंचमी, षष्ठी एवं सप्तमी विभक्त्यन्त रूप में है और दूसरा पद धातुज संज्ञा रूप में होता है। यथा – अश्वं जानाति = अश्ववित्, ग्रामं गतः = ग्रामगतः, देवेन दत्तः = देवदत्तः, शंकुलया खण्डः = शंकुलाखण्डः, गुरवे दक्षिणा = गुरुदक्षिणा, यूपाय दारु = यूपदारु, पंकात् जातः = पंकजः, सिंहात् भयम् = सिंहभयम्, राज्ञः पुरुषः = राजपुरुषः। "पुरुषः राजः = पुरुषों का राजा, अज लोम = बकरे का खाल, उदक पात्रः = पानी का कटोरा, ग्राम वासः = गाँव में रहना।"[9]

प्राचीन काल से कुछ ऐसे समस्त पद भाषा में प्रयुक्त होते आ रहे हैं जिनकी समास की स्थिति में पूर्व पद की विभक्ति का लोप नहीं होता। इसे अलुक् समास कहते हैं, यथा– दिवः दासः = दिवोदासः, सरसि जायते = सरसिजम्, धनं जयति = धनञ्जयः आदि।

**समानाधिकरण तत्पुरुष** – 1. कर्मधारय – "एक तरह के आधार वाले तत्पुरुष को 'कर्मधारय समास' कहते हैं।"[10] इसमें सामान्य रूप से पूर्वपद विशेषण एवं उत्तर पद संज्ञा होता है। यथा– नीलोत्पलम् = नीला कमल – नीलम् उत्पलम्, कृष्णः सर्पः = काला साँप = कृष्णः चासौ सर्पः – कर्मधारय में विशेषकर विशेषण पूर्वपद तथा उपमान पूर्वपद सामान्य अर्थों की व्यंजना न करके, कई बार विशेष अर्थ का भी बोध कराते हैं– यथा– कृष्ण शकुनिः = कृष्णश्चासौ शकुनिः (यहाँ काला पक्षी का विशेष अर्थ कौआ जैसा

एक मांसाहारी पक्षिविशेष; इसी तरह नीलोत्पल का अर्थ केवल नीला कमल ही नहीं है अपितु एक विशेष वानस्पतिक जाति (Nymphaea cyane) इन्दीवर है।)"[11]

**द्विगु समास–** कर्मधारय तत्पुरुष का एक भेद द्विगु समास कहलाता है। इसमें विशेषकर विशेषण पर्वूपद के स्थान पर संख्यावाचक विशेषण का प्रयोग होता है। यथा– सप्तष्च ऋषयः = सप्तर्षिः, पञ्च च ते पाण्डवाः = पञ्च पाण्डवाः, चतुर्णां भुजानां समाहारः = चतुर्भुजः (ब्रह्मा) आदि।

नञ् समास – तत्पुरुष में जहाँ पूर्वपद निशेधार्थक (नञार्थक) हो तथा उत्तर पद संज्ञार्थक हो, वहाँ नञ् समास होता है। यह सादृश्य, अभाव, अन्यत्व, अप्राशस्त्य, विरोध और अल्पत्व के अर्थ में प्रयोग होता है। यथा– न अश्वः = अनश्वः (गधा आदि), घटो अपटो भवति = अपटः (जो वस्त्र नहीं), मनुष्यात् अन्यः = अमनुष्यः (मनुष्य से भिन्न), अप्रशस्तः ब्राह्मणः = अब्राह्मण (नीच ब्राह्मण), धर्माद्विरुद्धः = अधर्मः, अल्पं उदरं यस्याः सा = अनूदरा (पतली कमर वाली)।

**3. उभय पदार्थ प्रधान–** जिस समस्त पद में दोनों घटकों के अर्थ (पूर्वपद एवं उत्तर पद) समान महत्त्व धारण करते हों। इस प्रकार का समास द्वन्द्व समास होता है। इसकी रचना संज्ञा पदों में होती है। द्वन्द्व समास में दो या दो से अधिक पद च (और) से संयुक्त होकर समस्त पद की रचना करते हैं यथा– मित्रश्च वरुणष्च इति मित्रावरुणौ (वैदिक रूप), रामश्च कृष्णश्च इति रामकृष्णौ।

इसके प्रमुख तीन भेद हैं– साधारण द्वन्द्व (इतरेतर द्वन्द्व), समाहार द्वन्द्व और एक शेष द्वन्द्व। साधारण द्वन्द्व में द्विवचन के विभक्ति प्रत्यय की योजना केवल उत्तर पद में की जाती है, यथा– 'हरिश्च हरश्च इति हरिहरौ'।

इतरेतर द्वन्द्व में दो पदो ंके योग में द्विवचन तथा दो से अधिक पदो ंके योग में बहुवचन के विभक्ति प्रत्ययों की योजना की जाती है, यथा– रामश्च कृष्णश्च महेश्च इति रामकृष्णमहेशाः।

**समाहार द्वन्द्व–** समाहार द्वन्द्व में समस्त पद की प्रधानता होती है, पृथक्–पृथक् पदों की नहीं। इसमें समूह की प्रधानता के कारण समस्त पद के अन्त में सदा नपुंसकलिंग एवं एकवचन का प्रयोग होता है। समाहार द्वन्द्व का क्षेत्र इतरेतर द्वन्द्व से सीमित है। उदाहरण – वाक् च त्वक् च तयोः समाहारः = वाक्त्वचम्, छत्रं च उपानहौ च, तेषां समाहारः – छत्रोपानहम्, गंगा च शोणश्च इति गंगाशोणम्, पाणी च पादौ च – पाणिपादम्।

**एकशेष द्वन्द्व–** एक शेष वाले पद स्वरूपतः एक होते हुए भी अर्थतः दो भिन्न पदों का बोध कराते हैं। इसमें लिंग और वचन का प्रयोग शेष रहने वाले पद के ही अनुरूप होता है। संस्कृत के शब्द रूपों के द्विवचन और बहुवचन के रूपों की सिद्धि इसी आधार पर की जाती है, यथा– रामश्च रामश्च = रामौ, रामश्च रामश्च रामश्च इति रामाः। इसमें समानार्थक विरूप शब्दों का समास होने पर केवल पुल्लिंग शेष रह जाता है, यथा– माता च पिता च = पितरौ (Parents), भ्राता च स्वसा च = भ्रातरौ आदि।

**4. अन्य पदार्थ प्रधान–** इसके अन्तर्गत बहुब्रीहि समास को रखा गया है। जिस समस्त पद में किसी ऐसे अन्य पदार्थ का महत्त्व होता है जो उन दोनों पदो ंके अर्थ को धारण करता है– "अनेक अन्य पदार्थे (2.2.24) अन्य पद के अर्थ में वर्तमान अनेक प्रथमान्त पदों का विकल्प से समास होता है और उसे बहुब्रीहि कहते हैं।"[12]

बहुब्रीहि समास की साधारणतया पहचान यह है कि जहाँ अर्थ करने पर जिसको, जिसने, जिसका आदि अर्थ निकलता है तथा समस्त पद किसी विशेष्य के विशेषण के रूप में प्रयोग होता है। "अर्थ की दृष्टि से बहुब्रीहि समास में प्रथमा को छोड़कर 6 विभक्तियों का अर्थ रहता है जो 'यत्' सर्वनाम के विभिन्न विभक्त्यन्त रूपों से अभिव्यक्त किया जाता है। यथा–

द्वितीयार्थक बहुब्रीहि – प्राप्तं उदकं यं सः
= प्राप्तोदकः ग्रामः

तृतीयार्थक बहुब्रीहि – कृतं कार्यं येन सः
= कृतकार्यः पुरुषः

चतुथ्यर्थक बहुब्रीहि – उपहृतः पशुः यस्मै सः

= उपह्वतपशुः रुद्रः

पंचम्यर्थक बहुव्रीहि – उद्धतं धनंयस्मात् सः
= उद्धत धनः कोशः

षष्ठ्यर्थक बहुव्रीहि – त्रीणि नेत्राणि यस्य सः
= त्रिनेत्रः शिवः

सप्तम्यर्थक बहुव्रीहि – प्रफुल्लानि कमलानि यस्मिन् तत् = प्रफुल्लकमलं सरः।"[13]

बहुव्रीहि समास में ईकारान्त, ऊकारान्त, ऋकारान्त एवं इन् प्रत्ययान्त शब्दों के उत्तर पद में होने पर समस्त पद के अन्त में 'क' प्रत्यय का योग हो जाता है, यथा–

दृष्टा वधू येन सः = दृष्टवधूकः
बहवः कर्त्तारः यस्य सः = बहुकर्तृकः।

इसके अतिरिक्त बहुव्रीहि समास में सह को 'स' आदेश होता है तथा मध्यम पद लोपी समास भी बनता है, यथा– ह्रदयेन सह = सह्रदयः, अश्वस्य मुखमिव मुखं यस्य सः = अश्वमुखः।

बहुव्रीहि का व्यापक विस्तार है। विस्तार भय से संक्षिप्त रूप दिया जा रहा है।

## सन्दर्भ ग्रन्थ सूची


1. संस्कृत व्याकरण, समास प्रकरण, पृ. 259; लेखक– डॉ. कपिलदेव द्विवेदी आचार्य, विश्वविद्यालय प्रकाशन, सन् 1967.
2. वहीं, पृ. 259.
3. संस्कृत का ऐतिहासिक एवं संरचनात्मक परिचय, अध्याय–8, समस्त पद रचना, पृ. 111; लेखक– डॉ. देवीदत्त शर्मा, हरियाणा साहित्य अकादमी, चण्डीगढ़, दूसरा संस्करण–1984.
4. वहीं, पृ. 111.
5. संस्कृत व्याकरण, समास प्रकरण, पृ. 259; लेखक– डॉ. कपिलदेव द्विवेदी आचार्य, विश्वविद्यालय प्रकाशन, सन् 1967.
6. संस्कृत का ऐतिहासिक एवं संरचनात्मक परिचय, अध्याय–8, समस्त पद रचना, पृ. 115; लेखक– डॉ. देवीदत्त शर्मा, हरियाणा साहित्य अकादमी, चण्डीगढ़, दूसरा संस्करण–1984.
7. संस्कृत व्याकरण, अव्ययीभाव समास, पृ. 262; लेखक– डॉ. कपिलदेव द्विवेदी आचार्य, विश्वविद्यालय प्रकाशन, सन् 1967.
8. संस्कृत व्याकरण, द्वितीय भाग – सामासिक प्रातिपदिकों का रूप निर्माण, पृ. 613, लेखक– डब्ल्यू.डी. ह्विटने, अनुवादक– डॉ. मुनीश्वर झा, उत्तर प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, लखनऊ, द्वितीय संस्करण 1971.
9. संस्कृत व्याकरण – नामित शब्दों की रचना, पृ. 253; टी.बरो, अनुवाद– डॉ. भोलाशंकर व्यास, चौखम्भा विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी 1965.
10. तत्पुरुषः समानाधिकरणः कर्मधारयः (1.2. 42) संस्कृत व्याकरण, तत्पुरुष समास, पृ. 269; लेखक– डॉ. कपिलदेव द्विवेदी आचार्य, विश्वविद्यालय प्रकाशन, सन् 1967.
11. संस्कृत व्याकरण – नामित शब्दों की रचना, पृ. 252; टी.बरो, अनुवाद– डॉ. भोलाशंकर व्यास, चौखम्भा विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी 1965.
12. संस्कृत व्याकरण, बहुव्रीहि समास, पृ. 275; लेखक– डॉ. कपिलदेव द्विवेदी आचार्य, विश्वविद्यालय प्रकाशन, सन् 1967.
13. संस्कृत का ऐतिहासिक एवं संरचनात्मक परिचय, अध्याय–8, समस्त पद रचना, पृ. 119; लेखक– डॉ. देवीदत्त शर्मा, हरियाणा साहित्य अकादमी, चण्डीगढ़, दूसरा संस्करण–1984.